कर्म-व्यवस्था

KARMA,

MANUAL IV.

by

MRS. ANNIE BESANT.

Translated in Hindi

by

SURAJ BHAN, B. A.,
LATE) PRINCIPAL DAYAL SINGH COLLE(
LAHORE.

[द्वि]तीय बार } १००० }   सन् १९३८   } मूल्य

विषय-सूची

कर्म-व्यवस्था

KARMA,

MANUAL IV.

by

MRS. ANNIE BESANT.

Translated in Hindi

by

SURAJ BHAN, B. A.,
(LATE) PRINCIPAL DAYAL SINGH COLLEGE
LAHORE.

मुद्रक—रामकृष्ण दास, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस,

द्वितीयवार)   सन् १९३८

थियोसोफिकल सोसाएटी

इसके उद्देश्य यह हैं:—

(१) वंश, वर्ण, जाति, मत, स्त्री वा पुरुष के भेद भावों को छोड़कर सार्वभौमिक भ्रातृभाव का एक केंद्र स्थापन करना।

(२) धर्म्म सम्बन्धी शास्त्रों, दर्शनों और विद्याओं के साम्प्रत्यध्ययन (comparative study) में लोगों की रुचि बढ़ाना।

सृष्टिक्रम के अस्पष्ट नियमों और मनुष्य की गुप्त शक्तियों को अन्वेपण करना।

नोट—यह सभा किसी मज़हब वा जाति से कुछ योजन नहीं रखती, सत्य को निर्णय करना इसका मुख्य उद्देश्य है, उसके सभासदों को अपनी सम्मति में पूर्ण स्वतन्त्रता है।

अनुवादक का उपोद्घात

यह पुस्तक श्रीमती ऐनी बेसेण्ट कृत Karma Manual अर्थात् कर्म-व्यवस्था नामक अनुवाद है—पहली बार यह लाला सूर्यभानु बी० ए०, प्रिंसिपल दयालसिंह कालिज लाहौर द्वारा छपा था—अब द्वितीय बार यह मिस्टर गणपतराय साहिब सकसेना, प्रोफेसर कानपुर कालिज से संशोधित कराकर उनके ज्येष्ठ पुत्र शामलाल द्वारा प्रकाशित हुआ है। आशा है हिन्दी ज्ञाता इससे यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

॥ ॐ ब्रह्मणे नमः

कर्म

मनुष्य का प्रत्येक संकल्प उदय होने पर अभ्यान्तरिक लोक में चला जाता है और अपने भावानुसार रूप-देवता (Elementals) यक्ष नामक विश्व की मन्दमति शक्तियों में से किसी एक के साथ सम्बद्ध अथवा तन्मय होकर, उत्साही प्राणी के समान कार्य्य करने लगता है। यह संकल्प मन से उत्पन्न होने के अनन्तर एक उद्योगी चैतन्य भूत के सदृश रहता है। इसकी न्यूनाधिक आयु उस मस्तिष्क क्रिया के वेगानुसार होती है जिससे यह उत्पन्न होता है। इस प्रकार शुद्ध संकल्प तो प्राणी उद्योगी और उपकारी बन जाते हैं, और अशुद्ध संकल्प ठीक इससे विपरीत अपकारी दुष्ट जीव बन जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने आकाशिक तेज के प्रभाव में निरन्तर अपनी एक सृष्टि रचता है। यह सृष्टि उसके विकल्प, वासना, तृष्णा और काम की तरङ्गों से उत्पन्न हुए प्राणियों से परिपूरित रहती है। इस सृष्टि का प्रवाह जिस कंपशील अथवा मृदु प्रवृत्ति (nervous and sensitive) वाले देहधारी को स्पर्श करता है, उसी पर अपने वेग की तीव्रता के अनुसार भाव डालता है। बौद्ध शास्त्रों में इस प्रवाह को स्कन्ध कहते हैं और आर्ष ग्रन्थों में कर्म्म नाम से पुकारते हैं,

कर्म-व्यवस्था

कर्म्म नियम का अपरिवर्त्तन

प्रसिद्ध है कि हम एक ऐसे लोक में निवास करते हैं जहाँ की प्रत्येक कार्रवाई ऐसे २ नियमों के अनुसार होती है जिनका उल्लंघन करना हमारी सामर्थ्य के वाहर है। यदि इस बात का पूर्ण अनुभव हो जावे और इसकी सत्ता मानसिक सृष्टि में वैसे ही प्रत्यक्ष हो जावे जैसे स्थूल सृष्टि में होती है, तो प्रायः एक प्रकार की परतन्त्रता हमारे ऊपर छा जाती है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम किसी ऐसी प्रबल शक्ति के अधीन हैं, जो हमें अपने इच्छानुसार जिधर चाहे कठपुतली के समान नचा रही है। परन्तु वास्तव में यह वात इससे उलटी है। क्योंकि जव इस प्रवल शक्ति का यथार्थ ज्ञान हो जावे तो यही शक्ति हमारे आज्ञाकारी सेवक के समान होकर जिस ओर हम चाहें हमें ले जाती है। विश्व की समस्त शक्तियों का जितना अधिक बोध हमें हो, उतना ही हम उनसे अपने इच्छानुसार काम ले सकते हैं। प्रकृति के नियमों का पालन करने से ही हम प्रकृति को जीत सकते हैं।

ज्ञान प्राप्ति से प्रकृति का दुर्निवार प्रवाह हमारे वश में आ जाता है, (जैसा कि पातञ्जलि मुनि भी योग सूत्र के १ म, अध्याय में लिखते हैं) ।

"परमाणु परम महत्वान्तोऽस्य वशीकारः" ॥ ३९ ॥

परमाणु से लेकर महत् पर्य्यन्त सब पदार्थ योगी के वश में हो जाते हैं । ज्ञानी जन प्रकृति की शक्तियों के अमित भण्डार में से जिस मात्रा और बल वाली शक्ति की आवश्यकता हो उसको अपने अर्थ के लिये कार्य्य में ला सकते हैं और इन शक्तियों के प्रयोग से अर्थ सिद्धि भी अवश्य होती है, क्योंकि प्रकृति के नियम नित्य सम रहते हैं ।

सायंस के प्रयोगों [Experiments] की सत्ता, फल प्राप्ति के निमित्त यत्नों का प्रबंध करना, और भविष्य के वृतान्त को पहले ही से कथन कर देना, नियमों की नित्यता पर ही निर्भर है । इसी के आश्रय रसायनिकों [Chemists] को निश्चय होता है, कि एक प्रकार की सामग्री के साथ एक ही प्रकार का अनुष्ठान करने से सदैव समान फल होता है; यदि कभी फल विपरीत भी हो जावे तो समझा जाता है कि अनुष्ठान में कहीं कुछ न्यूनता हो गई होगी, यह कभी अनुमान नहीं किया जाता कि प्रकृति के नियमों का परिवर्त्तन हो गया है । मनुष्यों के कर्मों के नियमों की भी ऐसी ही रीति वर्त्तती है । जितने ज्ञान के साथ कोई कर्म्म हम करते हैं, उतना ही ठीक

ठीक उसके भविष्य में होने वाले फल को बतला सकते हैं। प्रायः हम अपनी अज्ञानता से कह दिया करते हैं कि अमुक कार्य्य तो दैवयोग से हो गया है, वास्तव में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक कार्य्य नियमानुसार होता है। इन नियमों से अनभिज्ञ रहना अथवा उन पर ध्यान न देने के कारण ही हमारे मुख से दैवयोग, अकस्मात् आदि शब्द निकला करते हैं। जैसा कि स्थूल लोक में होता है वैसा ही मानसिक लोक में भी किसी क्रिया के फल को पहले से जान सकते हैं। उसकी प्राप्ति का यत्न करके उसकी सिद्धि पर निश्चय कर सकते हैं। प्रकृति अपनी (नियम) रीति में हमें कभी धोखा नहीं देती किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण हम आप ही धोखे में पड़ जाते हैं। प्रत्येक लोक में ज्ञान-वृद्धि के साथ ही बल-वृद्धि भी होती है, मानो सर्वज्ञता और सर्व-शक्तिमानता एक ही अर्थ के बोधक होते हैं॥

प्रकृति के नियमों की क्रिया मानसिक सृष्टि में स्थूल सृष्टि के समान नित्य एकसी क्यों न रहे, क्योंकि सर्व विश्व की उत्पत्ति एक तत्त्व से हुई है जिसको हम नियम कहते हैं, वह केवल उसी तत्त्व के स्वभाव का सूचक है। जिस प्रकार सर्व विश्व की उत्पत्ति एक तत्त्व से हुई है, उसी प्रकार उसकी स्थिति भी एक नियम के आश्रय से होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार केवल नियमों के नित्य स्वभाव पर ही निर्भर है।

ठीक उसके भविष्य में होने वाले फल को बतला सकते हैं। प्रायः हम अपनी अज्ञानता से कह दिया करते हैं कि अमुक कार्य्य तो दैवयोग से हो गया है, वास्तव में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक कार्य्य नियमानुसार होता है। इन नियमों से अनभिज्ञ रहना अथवा उन पर ध्यान न देने के कारण ही हमारे मुख से दैवयोग, अकस्मात् आदि शब्द निकला करते हैं। जैसा कि स्थूल लोक में होता है वैसा ही मानसिक लोक में भी किसी क्रिया के फल को पहले से जान सकते हैं। उसकी प्राप्ति का यत्न करके उसकी सिद्धि पर निश्चय कर सकते हैं। प्रकृति अपनी (नियम) रीति में हमें कभी धोखा नहीं देती किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण हम आप ही धोखे में पड़ जाते हैं। प्रत्येक लोक में ज्ञान-वृद्धि के साथ ही बल-वृद्धि भी होती है, मानो सर्वज्ञता और सर्व-शक्तिमानता एक ही अर्थ के बोधक होते हैं॥

प्रकृति के नियमों की क्रिया मानसिक सृष्टि में स्थूल सृष्टि के समान नित्य एकसी क्यों न रहे, क्योंकि सर्व विश्व की उत्पत्ति एक तत्त्व से हुई है जिसको हम नियम कहते हैं, वह केवल उसी तत्त्व के स्वभाव का सूचक है। जिस प्रकार सर्व विश्व की उत्पत्ति एक तत्त्व से हुई है, उसी प्रकार उसकी स्थिति भी एक नियम के आश्रय से होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार केवल नियमों के नित्य स्वभाव पर ही निर्भर है।

विश्व के मण्डल (लोक)

कर्म्म की अवस्था समझने के लिये, विश्व के नीचे लिखे हुए ३ मण्डलों और उनके सम्बन्धी मनुष्य के तत्त्वों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है ! निम्नलिखित चित्र में विश्व के मण्डलों, उनके सम्बन्धी तत्त्वों और उन उपाधियों के नाम लिखे गये हैं जिनके द्वारा जीव उन मण्डलों में भ्रमण कर सकता है। तत्त्वों के नामों से उनमें वर्त्तमान चेतना की अवस्था प्रतीत होती है।

आत्मा

सुषुप्ति मण्डल (लोक)	बुद्धि	महा कारण देह (Spiritual body)
स्वर्ग मण्डल Devachanic	मनस्	१ कारण देह (Causal body) २ मानसिक देह वा मायावी रूप (Mind body)
गगन मण्डल Psychic or astral	१ काममनस् २ काम	सूक्ष्म देह (Subtle body)
स्थूल मण्डल	१ लिङ्गशरीर २ स्थूलशरीर	स्थूल देह (Physical body)

जब योग के साधनों से जिज्ञासु इन मण्डलों में भ्रमण

करना सीखता है, तब शब्द-ज्ञान का निर्णय करके अपने तज-रबों द्वारा अनुभव-ज्ञान अर्थात् विज्ञान को प्राप्त कर लेता है। विश्व के स्थूल मण्डल अर्थात् इस जगत में कार्य्य करने के लिये जीवन को स्थूल देह की सहायता लेनी पड़ती है, इसी लिये जीव की चेतना का प्रकाश मस्तिष्क की शक्तियों से सीमाबद्ध (Limited) है।

गगन-मण्डल की प्रकृति कई दरजे की सूक्ष्मतावाली होती है, इसलिये इस मण्डल में कार्य्य करने के वास्ते जीव कई प्रकार की सूक्ष्म उपाधियों से काम लेता है। इन सब उपाधियों को सूक्ष्म शरीर के नाम से पुकारते हैं। स्वर्ग अर्थात् देवचान मण्डल दो भवनों में विभक्त है, जिनमें एक को रूप-भवन और दूसरे को अरूप-भवन कहते हैं। रूप-भवन में जीव मायावी रूप के आश्रय काम करता है, मायावी रूप को मानसिक प्रकृति से बनने के कारण मानसिक देह भी कहा करते हैं। अरूप-भवन में कारण शरीर काम देता है। चतुर्थ मण्डल का अभी समझना अति कठिन है, इसलिये उसका वर्णन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

स्मरण रहे कि इन मण्डलों की प्रकृति एक प्रकार की नहीं होती। प्रत्येक मण्डल की प्रकृति ऊपर के मण्डल की प्रकृति से अति घन और स्थूल होती है। सृष्टि-क्रम में भी इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म से स्थूल और अघन से घन होती है। इसके अति-

करता है। गगनमण्डल के देवताओं का मुख्य स्वभाव इन्द्रिय-ज्ञान का उत्पन्न करना है। जहाँ कहीं थरथराहट (vibration) अथवा स्पर्श होता है, वहीं कोई न कोई देवता अपने आप को उससे सम्बन्धित कर लेता है। और न केवल यही वरञ्च इस थरथराहट वा स्पर्श के सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय का बोध उत्पन्न कर देता है। ऐसे स्पर्श-ज्ञान (Sensation) को करने-वाले और विविध चेतनावाले देवताओं से गगन-मण्डल परिपूरित है। जिस प्राणी का देह इन देवताओं से निर्माण किया हुआ होता है उसमें स्पर्श-ज्ञान की सामर्थ्य होती है। और मनुष्य ऐसी ही निर्मित देह के कारण विषयों के सुख-दुःख, प्रिय-अप्रियों का अनुभव करता है। मनुष्य को अपने शरीर के रन्ध्रों अर्थात् (सेल्ज) (cells) कणों की चेतना का बोध नहीं होता। रन्ध्रों में अपनी चेतना अलग होती है और वह मनुष्यों की चेतना से भिन्न होती है। इसी चेतना के अनुसार रन्ध्र मनुष्य के जीवन के अर्थ अनेक क्रिया करते हैं, अर्थात् मनुष्य के शरीर में जिस वस्तु की न्यूनता होती है, उसे बाहर से लेजाकर पूर्ण करते हैं और जिस पदार्थ की अधिकता होती है, उसे बाहर निकालते हैं। मनुष्य अपनी चेतना द्वारा रन्ध्रों की इस क्रिया को न तो घटा सकता है और न बढ़ा सकता है। मनुष्य अपनी चेतना को हृदय के किसी रन्ध्र की चेतना में कभी ऐसा लीन नहीं कर सकता कि जिससे उसको रन्ध्र की क्रिया का यथार्थ ज्ञान हो। मनुष्यों की चेतना सामान्य

रीति से गगन-मण्डल में कार्य्य करती है, और यह कार्रवाई इस मण्डल के उच्च भवनों में भी काम-युक्त मनस् द्वारा हुआ करती है। शुद्ध मनस् कभी इस मण्डल में कार्य्य नहीं करता ॥

(Astral) गगन-मण्डल उसी प्रकार के देवताओं से पूरित है जिनसे मनुष्य का सूक्ष्म देह बना हुआ होता है। इन्हीं से पशुओं का काम देह भी बनता है, सूक्ष्म देह ही के कारण मनुष्य का सम्बन्ध इन देवताओं से होता है, और उन देवताओं की सहायता से अपने आस पास के पदार्थों के साथ सम्बन्धित होता है, और उनके प्रिय वा अप्रिय होने का अनुभव करता है। मनुष्य अपनी इच्छा, मानसिक तरङ्गों और वासनाओं के द्वारा गगन-मण्डल के असंख्य प्राणियों पर अपना भाव डालकर उनको चारों ओर से आकर्षित करता है। इस लेख से यह सिद्ध होता है कि सूक्ष्म शरीर एक कला के समान है, जिस रीति से यह कला बाहर से आये हुए स्पर्शों को ज्ञान में बदलती है ठीक उसी प्रकार अभ्यान्तरिक इन्द्रियाँ ज्ञान को थरथराहट में बदलती हैं ॥

संकल्प-रूपों की उत्पत्ति

उक्त व्याख्या की सहायता से अब हम महात्मा के अमृत रूपी वचनों को भली प्रकार से समझ सकेंगे। मन अपने भवन अर्थात् गगन-मण्डल की सूक्ष्मतर प्रकृति में कार्य्य करके नाना प्रकार के आकार उत्पन्न करता है; इन आकारों को संकल्प-रूप

[Thought forms] कहते हैं। मन की जिस शक्ति से यह रूप उत्पन्न होते हैं उसे कल्पना शक्ति [Imagination] कहते हैं। यदि इसको मनस् की जननी शक्ति भी कहा जावे, तो बहुत ठीक है। सम्भाषण के समय संकल्प-रूपों को दूसरों के समक्ष प्रकट करने के अर्थ शब्द तो एक तुच्छ और अधूरासा साधन है। शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती है कि वह एक मनुष्य के मन के आशय को दूसरे के मन में यथार्थ रूप से पहुँचा देवे, क्योंकि प्रत्यय अथवा संकल्प-रूप एक बड़ी संकीर्ण [complicated] सी वस्तु है, उसके यथार्थ रूप के वर्णन के अर्थ कई वाक्य कहने पड़ते हैं। वार्त्तालाप में एक आशय के प्रकट करने के लिये बार बार लम्बे लम्बे वाक्य कहने पड़ते हैं। जिनसे एक तो समय व्यर्थ व्यतीत होता है और दूसरे बात का आनन्द जाता रहता है; इसलिये वार्त्तालाप की सुगमता के वास्ते संकेत नियत किये जाते हैं। इन संकेतों के नियत करने की रीति यह है कि किसी प्रसङ्ग के मानसिक रूप के प्रधान चिह्न को लेकर, उस चिह्न के सूचक शब्द से सब प्रसङ्ग को सूचित करते हैं; प्रधान चिह्न के नाम और प्रसङ्ग में यह सम्बन्ध संकेत मात्र होता है, जैसे त्रिकोण शब्द का श्रवण श्रोता के चित्त में एक आकार उत्पन्न करता है, जिसको पूरा पूरा शब्दों द्वारा वर्णन करना, बिना कई वाक्यों के, असम्भव है। यहाँ केवल आकार के प्रधान चिह्न अर्थात् तीन कोनों को देख कर

का ज्ञान उत्पन्न करती है। संकल्प-रूप के परमाणुओं की थर-थराहट ज्यों ज्यों गगन-मण्डल के निचले भवनों की अधम प्रकृति में उतरती आती है, उतनी ही यह चारों ओर प्रकाश-युक्त ध्वनि उत्पन्न करती है, और अपने वर्ण के रङ्ग से संबन्धित देव-ताओं को आवाहन कर अपने स्रोतम् [संकल्प-रूप] की ओर ले जाती है ॥

विश्व की अन्य सब वस्तुओं के समान देवगण भी सप्त प्रजापतियों में से किसी न किसी के साथ अवश्य सम्बन्ध रखते हैं। शब्द ब्रह्म की तृतीय अवस्था के शुद्ध निरञ्जन प्रकाश में से सप्त रङ्ग की किरणें निकलती हैं। प्रत्येक किरण में से फिर सप्तरश्मि निकलती हैं। इसी प्रकार हर एक रश्मि सप्त उप-रश्मियों में विभक्त है। इस प्रकार शब्द ब्रह्म की अनेक रश्मियों से यह सब संसार आच्छादित हुआ है। और यही सब उपनि-षदों और वेदों का भी सिद्धान्त है। सृष्टि की अन्तर रचना इन्हीं रश्मियों के सम्बन्ध से होती है। इन रश्मियों को प्रकृति के निचले भवनों में देवता के नाम से पुकारते हैं। इन देवताओं के साथ मनुष्य संभाषण भी कर सकता है, परन्तु स्मरण रहे कि यह संभाषण लौकिक रीति से वाणी द्वारा नहीं हो सकता; इनके साथ वार्त्तालाप ऐसी भाषा में होता है, जिसकी वर्णमाला अक्षरों की नहीं है, वरञ्च रङ्गों और रङ्गों के सूक्ष्म भेदों से निर्मित है। इन रङ्गों की भाषा का सविस्तार वर्णन मात्र शास्त्र

में आता है। आजकल यह विद्या बहुत कुछ लुप्त हो गई है, और जो कहीं कुछ थोड़ी बहुत है, वह भी लुप्त होती जाती है। यह विद्या परम्परा से गुप्त रक्खी जाती है, क्योंकि शब्द, रङ्ग और अङ्कों के यथार्थ बोध हो जाने से मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति के बल से इन देवताओं के साथ सम्भाषण कर सकता है, और उनको अपने वश करके जो चाहे वह काम भी ले सकता है।

इस रङ्ग भाषा के विषय में महात्मा "क० ह०" का यह कथन है कि तुम अपना आशय विश्व की ऐसी मन्दमति शक्तियों को किस विधि समझा सकते हो और वशीभूत क्योंकर कर सकते हो, जब कि इनके साथ संभाषण का साधन लौकिक वाणी नहीं है, किन्तु नाद (Sound) और रङ्ग (Colour) के परस्पर सम्बन्धित थरथराहट से बनी हुई वाणी है। इन शक्तियों की अनेक श्रेणियाँ नाद, प्रकाश और रङ्ग के ही भेद के कारण होती हैं। इनकी सत्यता का न तो तुमको कुछ पता है और न इस पर तुम्हारा विश्वास ही है। नास्तिक, ईसाई आदि अपने अपने तर्कों के अनुसार लोगों के विश्वास को दूर करते जाते हैं। सायन्स विद्या तो सबसे बढ़कर इसको मिथ्या धर्म्म समझ कर विश्वास हीन हुई है।

देश देशान्तर के प्राचीन ग्रन्थों में इस रङ्ग भाषा के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। मिस्र देश में भी प्राचीन समय में

अलौकिक धर्म्म-पुस्तकें रङ्गों में ही लिखी जाती थीं। यदि कोई लेखक प्रति में किञ्चन्मात्र भी अशुद्धि करता, तो उसको मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार की आश्चर्य्यमय वार्त्ताओं का इस स्थान में सविस्तार लिखना आवश्यक नहीं। यहाँ हमारा प्रयोजन केवल इस बात के प्रकट करने का है कि देवताओं (Elementals) के साथ संभाषण रङ्गों द्वारा किया जाता है। रङ्गों द्वारा उनको हमारा आशय ठीक वैसे ही प्रतीत हो जाता है जैसे हमको एक दूसरे के आशय लौकिक वाणी द्वारा विदित हो जाते हैं।

संकल्प-रूपों के सूक्ष्म भेद होते हैं। इन रूपों को उत्पन्न करनेवाले मनुष्य के मन में जिस प्रकार का प्रेरक हेतु होता है, उसी प्रकार का रङ्ग उस रूप के ध्वनि युक्त प्रकाश का भी होता है। यदि प्रेरक हेतु शुद्ध, प्रेममय और परोपकार के निमित्त हो, तो उसका सम्बन्धित रङ्ग उसके संकल्प-रूप की ओर ऐसा देवता आकर्षण करेगा जो शुभ, प्रेममय और उपकार युक्त कर्मों में उद्योगी हो। यह देवता उसको चेतन बनाता है, मानो यह देवता उस जड़ रूप का जीवात्मा है। इस प्रकार से गगन-मण्डल में परोपकारी स्वतन्त्र प्राणी उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त यदि प्रेरक हेतु अशुद्ध, अधमी और अपकारी हो, तो उसका सम्बन्धित रङ्ग ऐसे देवता को संकल्प-रूप की ओर आकर्षण करेगा, जो कि अशुभ, निकृष्ट और अपकारी कर्मों

होती है। जिन महापुरुषों की दिव्य दृष्टि विशेष रूप से खुल जाती है उनको संकल्पों के रूप और देवगणों की श्रेणियों पर रंगों के भाव भी प्रतीत होने लगते हैं।

संकल्प-रूपों की उद्योगिता

इन प्राण प्रतिष्ठित संकल्प-रूपों की आयु प्रथम तो उनके आदि वेग (Initial intensity) से निर्णय होती है, अर्थात् इनको उत्पन्न करनेवाले मनुष्यों के संकल्प दृढ़ होने से, इनकी आयु दीर्घ और मध्यम होने से अल्प होती है। दूसरे, इनकी आयु उस आहार पर निर्भर है, जो इनको उत्पत्ति के पश्चात् अपने उत्पत्तिकर्त्ता, अथवा अन्य मनुष्यों द्वारा उन्हीं संकल्पों पर बार-म्बार चिन्तन करने से मिलता है। चिन्तन के पुनराभ्यास से उनकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है। जिस संकल्प को बार-म्बार मगन होकर ध्याया और रटा जावे, वह गगन-मण्डल में दृढ़ रूप से स्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त सजातीय सङ्कल्पों में परस्पर आकर्षण भी होता है, जिससे उनकी परस्पर पुष्टि होती है; इस विधि गगन-मण्डल में महाबली और उद्योगी रूप देवता विद्यमान होते हैं।

संकल्प-रूपों और उनके उत्पत्ति कर्त्ताओं में एक अदृश्य गूढ़ सम्बन्ध (Magnetic tie) भी होता है, जिसके कारण व— —

अपने उत्पत्ति कर्त्ताओं के चित्त में भाव डालकर, अपनी पुनरुत्पत्ति के संस्कार जागते हैं, अर्थात् उनके चित्त में विद्यमान होकर उनको अपने ही चिन्तन करने, और निज भावानुसार वर्त्ताव करने की प्रेरणा करते हैं। पुनराभ्यास से जब कोई संकल्प दृढ़ हो जाता है तो चित्त में उसके चिन्तन का निश्चित भाव उत्पन्न हो जाता है, मानो एक ऐसी प्रणाली बन जाती है कि जिसमें चिन्तन शक्ति का प्रवाह बिना रोक निर्यत्न स्वतः सिद्ध बहने लगता है, और इससे मानसिक उन्नति में सहायता मिलती है यदि भाव श्रेष्ठ और अत्युत्तम हो; अन्यथा वह भाव निकृष्ट होने के कारण महा विघ्नकारी और दुःखदाई हुआ करता है।

स्वभावों के बनने की इस रीति पर कुछ थोड़ा सा विचार करना यहाँ पर उचित जान पड़ता है, क्योंकि इससे कर्मों की गहन गति सूक्ष्म परिमाण से भली भाँति प्रकट होती है। उदाहरण की रीति से कल्पना कर लो कि एक ऐसा सज्जीभूत (Ready-made) चित्त है कि जिसमें भूत काल के कर्मों का कोई संस्कार नहीं है। ऐसे चित्त का मिलना यद्यपि असम्भव है, तथापि कल्पित उदाहरण से हमारा उद्देश्य भली भाँति सिद्ध हो जावेगा। ऐसा चित्त माना जा सकता है, जो सम्पूर्ण स्वतन्त्रता से निज इच्छानुसार चिंतन करके एक संकल्प रूप उत्पन्न करता है। इसके अनन्तर उसी संकल्प को बारम्बार रटने से चिन्तन की एक निश्चित वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी वृत्ति के उत्पन्न

होने पर फिर चित्त स्वयमेव अजानता से ही, उस संकल्प के चिन्तन में लग जाया करेगा, मानो चिन्तन शक्ति का प्रवाह, इच्छा किये बिना ही उस संकल्प की ओर बहने लगेगा। अब मान लो कि चित्त इस वृत्ति को किसी कारण निन्दित समझने लगा है, और उसको अपनी उन्नति में हानि-कर्त्ता जानकर उसका त्याग करना चाहता है। स्मरण रहे कि आदि में यह वृत्ति चित्त की निज स्वतंत्र कार्रवाई से उत्पन्न हुई थी, फिर उसकी शक्ति के प्रवाह के लिये सज्जीभूत [तैयार] प्रणाली विधान करके उसके कार्य्यों में सहायकारी हो गई है। यदि चित्त इस वृत्ति से रहित होना चाहे, तो हो सकता है। जिस प्रकार निज पुरुषार्थ से इसे उत्पन्न किया था, उसी प्रकार निज आन्तरीय पुरुषार्थ से इस विघ्न रूपी सचेतन बेड़ी को (Living fetters) छिन्न भिन्न वरञ्च नष्ट भी कर सकता है। इस उदाहरण में हमने मानसिक कर्म्म के एक छोटे से युग की गति को शीघ्र व्यतीत होते देख लिया है। स्वतंत्र चित्त पहले तो एक बन्धनरूपी स्वभाव बनाता है, और फिर उसे अपने ही बनाये हुए बन्धनों में कार्य्य करना पड़ता है, तथापि बन्धनों के घेरे के भीतर उसे कार्य्य करने में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। यदि चाहे तो आन्तरीय परिश्रम से उसके प्रतिकूल कार्य्य करके उसका विनाश कर दे। इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं है कि हम अपने आप को कभी किसी कार्य्य के आरम्भ में पूर्ण स्वतन्त्र

से ही मलीन और अधम योनि के देवताओं अथवा भूत-प्रेतों को परे भगा देते हैं। सत्पुरुषों के गिर्द यह तेज चार-दीवारी के समान रक्षक होता है, और किसी आपत्ति को उनके निकट नहीं आने देता।

गगनमण्डल के देवताओं में एक अन्य प्रकार की उद्योगिता होती है, जिसके कारण बड़े बड़े फल देखने में आते हैं। इस लिये कर्म्मजाल को निर्म्माण करनेवाली शक्तियों के संक्षिप्त वर्णन में से उस उद्योगिता के वर्णन का त्याग करना योग्य नहीं है। यह उद्योगिता पूर्व लिखित महात्मा के वाक्य के अन्तर्गत है। संकल्प-रूप आकाशिक तेज के प्रवाह में रहते हैं, और यह प्रवाह जिस कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य के साथ स्पर्श करते हैं, उसी पर अपने वेग की तीव्रता के अनुसार प्रतिभाव डालते हैं। किसी अवधि तक तो इस प्रवाह का भाव सब पर पड़ता है, परन्तु जितनी कोमल प्रकृति होती है, उतना ही उस पर अधिक असर होता है। सजातीय देव परस्पर आकर्षण शक्ति द्वारा एकत्र हो, सहचारी पुञ्ज बन जाते हैं, और अपनी प्रकृति के अनुसार कल्याण वा अकल्याणकारी होते हैं। सजातीय संकल्प-रूपों के संग्रह हो जाने के कारण विदेशीय और विजातीय पुरुषों अथवा अन्यान्य कुटम्बों में मति-भेद होता है, इसी लिये एक कुटुम्ब के पुरुषों की मति दूसरे कुटुम्ब के पुरुषों से नहीं मिलती। एक देश अथवा एक संप्रदाय के सभ्यों में जो मति किसी विषय में होती

है, वह अन्य देश और अन्य संप्रदाय के लोगों में नहीं होती। मनुष्यों के चारों ओर इन संकल्प-रूपों से मानो बादल सा छा जाता है, जिसमें से प्रत्येक पदार्थ दृष्टि-गोचर होता है। जैसे स्फटिक मणि समीपवर्ती पुष्प के रङ्ग से युक्त भासती है, वैसे ही दृष्य पदार्थ इस मेघ से रञ्जित होकर, मनुष्य की बुद्धि में भासता है। ये मेघ मनुष्य के कामनायुक्त मनस् में अपनी प्रति-क्रिया से स्पन्द अथवा थरथराहट को उठाकर उनके हृदय में अपने जैसी भावना की प्रेरणा करता है। ऐसे ऐसे कुटुम्ब, स्थान और जाति के संग्रहीत कर्मों के कारण, मनुष्य की उद्योगिता बहुत कुछ बदल जाती है, और निज योग्यता के प्रकट करने की शक्ति भी बहुत कुछ सीमाबद्ध हो जाती है। यदि किसी ऐसे मनुष्य से कोई ज्ञान की वार्ता कही जावे, तो उसे प्रायः उसका बोध यथायोग्य न होगा, क्योंकि उसके इर्द गिर्द के आच्छादित मेघ में से होकर जिस प्रकार का आभास उसकी बुद्धि में पड़ेगा, वैसा ही ज्ञान उसमें फुरेगा। यह आभास मेघ के गुणों से रञ्जित हो जाता है, और प्रायः तो ऐसा बदल जाता है कि उसका वास्तविक गुण छिप जाता है, और कुछ का कुछ दृष्टि-गोचर होता है। कर्मों की यह गति अतीव गूढ़ है, इसका सविस्तार वर्णन आगे किया जावेगा। उक्त एकसाँ चित्त वाले देवगणों का भाव मनुष्यों पर ही नहीं होता किंतु जब यह पुञ्ज-घातक और विनाशक संकल्पों से बना हुआ होता है, तो उसका

४ थं, जीवन की वह अवस्था है, जो जीव को स्वर्ग से निकलने के पीछे भूमण्डल में पुनर्जन्म लेने के पहले भोगनी पड़ती है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना काल-चक्र पूर्ण करने के अर्थ इन चारों अवस्थाओं में अवश्य गमन करना पड़ता है। इस युग में मनुष्य जाति की वर्त्तमान दशा में सामान्य मनुष्य चाहे कितना ही अधिक और उच्च ज्ञान प्राप्त क्यों न कर ले, उसे इस कालचक्र की चारों अवस्थाओं में तब तक अवश्य गमन करना पड़ता है, जब तक उसकी अध्यात्मिक उन्नति एक विशेष पद तक पहुँच कर आत्मज्ञानदायक न होती हो। इस बात को भली भाँति जान लेना परमावश्यक है कि स्थूल देह के वियोग के अनन्तर शेष तीन अवस्थाओं में निवास का समय, स्थूल देह के जीवन-काल की अपेक्षा बहुत ही अधिक होता है। इसी लिये मृत्यु के अनन्तर की अवस्थाओं में यदि जीव की गति और उसकी क्रिया को न विचारें तो कर्म्मों की गहन मति का ज्ञान बहुत ही अधूरा रहेगा। अब हम एक महात्मा के कथन को साक्षी

४ र्थ, जीवन की वह अवस्था है, जो जीव को स्वर्ग से निकलने के पीछे भूमण्डल में पुनर्जन्म लेने के पहले भोगनी पड़ती है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना काल-चक्र पूर्ण करने के अर्थ इन चारों अवस्थाओं में अवश्य गमन करना पड़ता है। इस युग में मनुष्य जाति की वर्त्तमान दशा में सामान्य मनुष्य चाहे कितना ही अधिक और उच्च ज्ञान प्राप्त क्यों न कर ले, उसे इस कालचक्र की चारों अवस्थाओं में तब तक अवश्य गमन करना पड़ता है, जब तक उसकी अध्यात्मिक उन्नति एक विशेष पद तक पहुँच कर आत्मज्ञानदायक न होती हो। इस बात को भली भाँति जान लेना परमावश्यक है कि स्थूल देह के वियोग के अनन्तर शेष तीन अवस्थाओं में निवास का समय, स्थूल देह के जीवन-काल की अपेक्षा बहुत ही अधिक होता है। इसी लिये मृत्यु के अनन्तर की अवस्थाओं में यदि जीव की गति और उसकी क्रिया को न विचारें तो कर्म्मों की गहन मति का ज्ञान बहुत ही अधूरा रहेगा। अब हम एक महात्मा के कथन को साक्षी की रीति पर यहाँ लिखते हैं। जिसमें यह वर्णन किया गया है कि मनुष्य का यथार्थ जीवन स्थूल देह के अनन्तर होता है।

"वेदान्ती दो प्रकार का जीवन मानते हैं। एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। उनका यह भी कथन है कि इसमें किंचित् भी संशय नहीं कि पारलौकिक जीवन ही सत्य है, सत्य क्योंकि लौकिक जीवन तो सदैव बदलता रहता है, और

उसकी आयु भी बहुत अल्प है, और यह केवल हमारी इन्द्रियों के बने हुए इन्द्रजाल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ऊर्द्ध लोकों का जीवन ही सत्य मानना चाहिये, क्योंकि इन्हीं लोकों में हमारा अवच्छिन्न, निर्विकार और अमर सूत्रात्मा निवास करता है····इसी वास्ते मृत्यु के पीछे की अवस्था को सत्य और लौकिक जीवन तथा उसके अहंकार को असत्य माना जाता है"।

लौकिक जीवन में जीव की उद्योगिता का मुख्य प्रकाश संकल्प-रूपों की उत्पत्ति में होता है, जिनका पहले वर्णन हो चुका है। अब कर्म गति को ठीक ठीक समझने के लिये सबसे पहले संकल्प-रूपों के जानने की परमावश्यकता है कि वह क्या है। जीवात्मा चित्त रूप धारण कर मानसिक चित्र उत्पन्न करता है, इस मानसिक चित्र को आदि चित्र कहते हैं। क्योंकि यह संकल्प की आदि अवस्था होती है। यह चित्र निज उत्पत्ति-कर्त्ता की सम्वित अर्थात् चेतना का अंश बनकर, उसका साथी बना रहता है, और इसी से सूक्ष्म प्रकृति में अथवा आकाश में स्पन्द-रूप सत्ता अर्थात् रूपदेवता बन जाते हैं। शब्द अथवा वाणी की यह वह अवस्था है जो विचार में तो आ चुकी है, परन्तु मुख द्वारा उच्चारण में नहीं आई। जिज्ञासुओं को उचित है कि संकल्प-रूप अन्य वृत्तियों से मन को रोक कर, एक ही संकल्प-

की चेतना का अंश हो, उसके स्वभाव का अविच्छेद्य (Inalienable) भाग हो जाता है। वह उससे कभी भी भिन्न नहीं किया जा सकता, वरञ्च लौकिक जीवन में उसके सङ्ग रहकर मृत्यु के अनन्तर अदृश्य लोकों में भी उसके साथ साथ जाता है। जब इसका उत्पत्ति-कर्त्ता ऊर्द्ध लोकों में गमन करता हुआ ऐसे लोकों में प्राप्त होता है जहाँ की प्रकृति अति सूक्ष्म और अघन होने के कारण अतीव तीव्र स्पन्दमय होती है, तो इस चित्र की घन और असूक्ष्म प्रकृति छिन्न-भिन्न हो अधः लोक में विस्तृत हो जाती है, और उस चित्र का संस्कार उत्पत्ति-कर्त्ता के सङ्ग रह जाता है। फिर जब जीवात्मा ऊर्द्ध लोक से लौटता है तो यही संस्कार, जो कि सङ्कल्प का बीज रूप था, फिर अपनी त्यागी हुई घन प्रकृति को आकर्षित कर पूर्ववत् ही अपना चित्र बना लेता है। जैसे कि वृक्ष के बीज भी पृथ्वी से यथोचित्त आहार ग्रहण कर अपना ही रूप, फल, फूल और रस ग्रहण करते हैं, अर्थात् गल्गल एक विशेष रूप, और आमल रस को, और मीठे नींबू, निराले रूप और मधुर रस को ही ग्रहण करते हैं।

यह मानसिक चित्र दीर्घकाल तक प्रसुप्त अवस्था में भी रहते हैं, और अपनी प्रबोधक सामग्री के प्राप्त होने पर जाग उठते हैं, और निज कार्य्य करने लगते हैं। यह प्रबोधक सामग्री

इसकी आयु भी बहुत अल्प है, और यह केवल हमारी इन्द्रियों के बने हुए इन्द्रजाल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ऊर्ध्व लोकों का जीवन ही सत्य मानना चाहिये, क्योंकि इन्हीं लोकों में हमारा अविच्छिन्न, निर्विकार और अमर सूत्रात्मा निवास करता है....इसी वास्ते मृत्यु के पीछे की अवस्था को सत्य और लौकिक जीवन तथा उसके अहंकार को असत्य माना जाता है"।

लौकिक जीवन में जीव की उपयोगिता का मुख्य प्रकाश संकल्प-रूपों की उत्पत्ति में होता है, जिनका पहले वर्णन हो चुका है। अब कर्म गति को ठीक ठीक समझने के लिये सबसे पहले संकल्प-रूपों के जानने की परमावश्यकता है कि वह क्या है। जीवात्मा चित्त रूप धारण कर मानसिक चित्र उत्पन्न करता है, इस मानसिक चित्र को आदि चित्र कहते हैं। क्योंकि यह संकल्प की आदि अवस्था होती है। यह चित्र निज उत्पत्ति-कर्त्ता की सम्वित अर्थात् चेतना का अंश बनकर, उसका साथी बना रहता है, और इसी से सूक्ष्म प्रकृति में अथवा आकाश में स्पन्द-रूप सत्ता अर्थात् रूपदेवता बन जाते हैं। शब्द अथवा वाणी की यह वह अवस्था है जो विचार में तो आ चुकी है, परन्तु मुख द्वारा उच्चारण में नहीं आई। जिज्ञासुओं को उचित है कि संकल्प-रूप अन्य वृत्तियों से मन को रोक कर, एक ही संकल्प-रूप में इसको बद्ध करें, और उसके फलों को त्याग उसके यथार्थ रूप को विचारें। यह चित्र अर्थात् संकल्प अपने उत्पत्तिकर्त्ता

की चेतना का अंश हो, उसके स्वभाव का अवच्छेद्य (Inalienable) भाग हो जाता है। वह उससे कभी भी भिन्न नहीं किया जा सकता, वरञ्च लौकिक जीवन में उसके सङ्ग रहकर मृत्यु के अनन्तर अदृश्य लोकों में भी उसके साथ साथ जाता है। जब इसका उत्पत्ति-कर्त्ता ऊर्द्ध लोकों में गमन करता हुआ ऐसे लोकों में प्राप्त होता है जहाँ की प्रकृति अति सूक्ष्म और अघन होने के कारण अतीव तीव्र स्पन्दमय होती है, तो इस चित्र की घन और असूक्ष्म प्रकृति छिन्न-भिन्न हो अधः लोक में विस्तृत हो जाती है, और उस चित्र का संस्कार उत्पत्ति-कर्त्ता के सङ्ग रह जाता है। फिर जब जीवात्मा ऊर्द्ध लोक से लौटता है तो यही संस्कार, जो कि सङ्कल्प का बीज रूप था, फिर अपनी त्यागी हुई घन प्रकृति को आकर्षित कर पूर्ववत् ही अपना चित्र बना लेता है। जैसे कि वृक्ष के बीज भी पृथ्वी से यथोचित आहार ग्रहण कर अपना ही रूप, फल, फूल और रस ग्रहण करते हैं, अर्थात् गलगल एक विशेष रूप, और आमल रस को, और मीठे नींबू, निराले रूप और मधुर रस को ही ग्रहण करते हैं।

जैसा जैसा संकल्प होगा वैसा ही उसका चित्र होगा। मानसिक चित्र शुद्ध वा अशुद्ध, विचारशील वा कामबद्ध, उपकारी वा अपकारी, और कैसा ही क्यों न हो, सबके सब मनुष्य की चित्त-भूमि को सदैव निज आश्रय बना रखते हैं, इन्हीं के कारण पृथक् पृथक् मनुष्यों के कर्म्म भिन्न भिन्न बनते हैं। इन चित्रों के आश्रय बिना मनुष्य का एक जन्म २ य, जन्म से कभी संबन्धित नहीं हो सकता। कर्म्मों की नित्य सत्यता के वास्ते इनके साथ मनस् की शक्ति का संयोग होना आवश्यक है। जब तक कोई क्रिया मानसिक शक्ति से संपन्न न हो, तब तक वह नित्य और अपरच्छेद्य नहीं बन सकती। धातु (minerals), उद्भिद (vegetable) और पशु जातियों के पृथक् पृथक् कर्म्म इसी वास्ते नहीं होते कि उनकी क्रियाओं के सङ्ग मानसिक शक्ति का संयोग नहीं होता।

अब इस बात पर विचार करना विधेय है कि उक्त मानसिक चित्रों का संबन्ध उन उपचित्रों के साथ क्या है, जो कि गगन-मण्डल के देवगणों के साथ संयुक्त होकर उद्योगी संकल्प रूप कहलाते हैं। उपचित्र क्या होते हैं, और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, पहले इस बात का वर्णन किया जाता है। यह उपचित्र शब्द की उस अवस्था में बनते हैं, जो वैखरी और मध्यमा वाक् के बीच में होती है, अर्थात् हृदय से शब्द के उठने के अनन्तर और कण्ठ में आने से पूर्व की अवस्था में यह उपचित्र

दशा के अनुकूल दीर्घ अथवा अल्प होता है। इन उपचित्रों के प्रशान्त अथवा नष्ट हो जाने से उनके जन्मदाता मानसिक चित्रों की कुछ हानि नहीं होती, क्योंकि मानसिक चित्र योग्य सामग्री के पास होने पर प्रबोधक शक्ति के पुनरावेग से अपनी प्रतिमा गगन-मण्डल में उत्पन्न कर लेते हैं जैसे कि एक शब्द के दुहराने से उसका चित्र पुनः उत्पन्न हो जाता है।

मानसिक चित्रों का स्पन्द (कंप) केवल गगनमण्डल की अधः प्रकृति में ही गमन नहीं करता, वरञ्च इसका भाव ऊर्द्ध लोकों में भी पहुँचता है, और जिस प्रकार यह स्पन्द घन प्रकृति में एक स्थूलाकार उत्पन्न करता है, वैसे ही ऊर्द्ध लोकों में आकाश के अन्दर एक ऐसा सूक्ष्म रूप सृजता है, जो हमारे सूक्ष्म इन्द्रियों के गोचर नहीं होता। आकाश सब चित्रों का भण्डार है, मानो यह सब सङ्कल्पों का निवासस्थान है, जो सृष्टि की उत्पत्ति के लिये ब्रह्माजी के मन से उपजते हैं। इस भण्डार में केवल ब्रह्माजी के संकल्प ही नहीं उत्पन्न होते, किंतु सृष्टि के उन स्पन्दों का फल भी इसमें संग्रह होता है, जो बुद्धिमानों के संकल्पों, कामिक पुरुषों की वासनाओं और प्रत्येक लोक की अनंत रचनाओं से होता है। ब्रह्माण्ड की सब रचना के संस्कार आकाश में सञ्चित रहते हैं। यद्यपि वह अति सूक्ष्म होने के कारण हमारे इन्द्रियों के गोचर नहीं होते, परन्तु योगी जनों को वह ठीक इसी प्रकार देखने में आते हैं, जैसे कि

सामर्थ्य उसे प्राप्त होगी, क्योंकि प्रकृति का यह बड़ा नियम है कि असत्य में से सत्य कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि मनुष्य अभिलाषा और इच्छा के बीज बोकर अपनी शक्तियों को काम में न लावेगा, तो देवचान में उसकी खेती बहुत ही थोड़ी होगी।

पुनश्चिन्तन से उपजे हुए ऐसे मानसिक चित्रों से, जिनका प्रेरक हेतु न तो कोई उच्च उद्देश्य हो और न निज सामर्थ्य से बढ़कर कार्य्य करने की अभिलाषा ही हो, एक विकल्प-प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, मानो कि मस्तिष्क में ऐसी ऐसी प्रणालियाँ (Grooves) बन जाती हैं, जिनमें से मानसिक शक्ति फिर स्वयमेव सुगमता के साथ विना प्रयत्न वहा करती है। इस कारण ही अति आवश्यक है कि चित्त को तुच्छ पदार्थों में कभी व्यर्थ भ्रमण न करने देना चाहिये। क्योंकि ऐसे भ्रमण से मलीन और क्षुद्र मानसिक चित्र बृथा उत्पन्न होते हैं, और चित्त में निवास करने लगते हैं। चित्त की चंचलता को रोकने का अभ्यास प्रत्येक जिज्ञासु को उचित है। प्रथम तो चित्त को तुच्छ पदार्थों में भ्रमण करने से रोके, क्योंकि भ्रमण द्वारा विषय संयोग से मलीन वृत्ति उत्पन्न होती है। २ य, चित्त में मलीन संकल्पों का आवेश न होने दें। ३ य, यदि आलस्य के कारण मलीन संकल्प चित्त में आ भी जावें, तो उनको तत्काल चित्त में से निकाल डालना चाहिये। उनको चित्त-भूमी में कभी निवास स्थान देना नहीं चाहिये। क्योंकि

कृति माता के मुख्य नियमानुसार है, और नीति शास्त्र केवल न नियमों का सम्बन्ध मनुष्य के आचार व्यवहार के साथ तलाता है। वह देखता है कि प्रतिदिन के व्यवहार में सुकर्म्म के द्वारा दुष्कर्म्म का नीच फल निर्बल अथवा नष्ट किया जा सकता है। एक मनुष्य उसके वास्ते नीच संकल्प भेजता है। दि वह उसका उत्तर सजातीय नीच संकल्प से देवे, तो दोनों कल्पों के रूप पानी की दो बूँद की तरह साथ साथ आकाश में मण करने लगते हैं और जैसे जल की बूँदें एकत्र होकर एक सरे के वेग को बढ़ाती हैं, उसी प्रकार सजातीय संकल्प-रूप एक दूसरे के वेग को बढ़ाते हैं। किन्तु वह कदापि नीच कल्प का उत्तर नीच संकल्प से नहीं देता, क्योंकि वह कर्म्म-ते का ज्ञाता है। भ्रष्ट और दुराशय वाले संकल्पों का उत्तर । और दया से भरे हुये संकल्पों से देकर, उनके हानिकारक पों को छिन्न भिन्न कर देता है। यह रूप छिन्न भिन्न होने पश्चात् भौतिक जीवन सत्ता (elemental life) से सचेत हीं रह सकता। रूप से अलग होकर यह सत्ता फिर आकाश में लीन हो जाती है और रूप नाश को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार संकल्प रूपों का हानिकारक भाव निवृत्त हो जाता है। निस्संदेह प्रीति और प्रेम द्वारा वैर और क्रोधादि के नीच

के वचनों के सार को समझ कर नीच संकल्प-रूपों को अपने ज्ञान से नाश करते हैं। पाप के बीज को निःफल बना कर आगामी दुःख संग्रह को निवृत्त करते हैं।

मन्द प्रवाह के साथ साथ चलने वाले साधारण मनुष्यों की भूमिका उलंघन करके जब मनुष्य विशेष पद को प्राप्त करता है, तब उसकी सामर्थ्य केवल इतनी हीन होगी कि अपने स्वभाव को सुधार सके, अपने से संसर्ग में आने वाले संकल्प-रूपों पर अपना भाव डाल कर उनको संसार के उद्धार के निमित्त परोपकारी बना सके, किन्तु इससे बढ़कर उसमें एक और शक्ति आ जाती है। अब वह भूतकाल के वृतान्त को जानने लगता है, अपने ज्ञानबल से वर्त्तमान काल की दशा यथार्थ रीति से जाँच सकता है, और कर्मों के फलों का खोज बहुत दूर तक लगा सकता है। सचेत रीति से अपनी शक्ति काम में लाकर वह भविष्यत् को बहुत कुछ बदल सकता है। वह अपनी क्रियाशक्ति को उन शक्तियों के प्रतिकूल काम में लाता है, जिनकी उद्योगिता भूतकाल में आरंभ हो चुकी है। अपने ज्ञानबल से अर्थसिद्धि के निमित्त प्रकृति के नियमों को वह ऐसे निश्चय के साथ वर्त्तने लगता है कि जिस निश्चय के साथ पश्चिम देश में पदार्थ विद्या के वेत्ता प्रकृति के नियमों को वर्तते हैं।

इस विषय के तत्त्व का अनुभव करने के वास्ते उचित प्रतीत होता है कि एक जड़ पदार्थ की संचालन गति को

विचारा जावे, किसी शक्ति के बल से हिलकर जब एक पदार्थ भ्रमण करने लगता है तो उसकी गति नियत वेग से होगी। यदि इस पदार्थ पर एक और शक्ति लगाई जावे, जिसकी दिशा और वेग कुछ और ही है, तो वह पदार्थ न तो पहले मार्ग पर चलेगा, और न दूसरी शक्ति के मार्ग पर; किन्तु उसकी दिशा उन दोनों दिशाओं के बीच में होगी, और वेग की तीव्रता भी बदल जावेगी। इसमें शक्ति की कुछ हानि नहीं हुई है; किन्तु एक शक्ति का कुछ अंश दूसरी शक्ति की क्रिया को थोड़ा सा निवारण करने में खर्च हो गया है। दोनों शक्तियों की क्रियाओं का जो फल है, उसी के वेग और दिशा के अनुसार पदार्थ की संचालन गति वर्तेगी। गणितवेत्ता गणित द्वारा ठीक ठीक मालूम कर सकता है कि किसी भ्रमते हुए पदार्थ पर किस दिशा में, और कितने बल से टक्कर लगाई जावे ताकि उसकी संचालन गति हमारी इच्छानुसार हो जावे। और यदि भ्रमता हुआ पदार्थ उसकी पकड़ से बाहर भी हो अर्थात् उससे दूर भी हो, तब भी वह उसकी ओर एक दूसरे पदार्थ को विशेष दिशा में विशेष वेग के साथ फेंककर उसे ऐसी टक्कर दे सकता है, जिससे वह अपने पहले मार्ग से हटकर इच्छित मार्ग पर भ्रमण करने लगे। इससे प्रकृति के नियमों में कुछ हानि नहीं पड़ी, उनके विरुद्ध कुछ क्रिया नहीं हुई। केवल नियम का ज्ञान होने से अर्थ की सिद्धि की गई है, मनुष्य के मनोरथ की सिद्धि करने के

कर्म्मगति को मोड़ने में हम कार्म्मिक शक्ति को ही काम में
ते हैं। प्रकृति के नियमों की आज्ञा-पालन से हम प्रकृति
ता को जीत लेते हैं।

अभ्यास करते करते जिज्ञासु इस भूमिका तक पहुँच जाता
, जहाँ से व्यतीत गति पर दृष्टि डालने से उसको अनुभव होता
कि भूत क्रियाओं का प्रवाह विशेषता से किस दिशा में और
केस वेग से हो रहा है, और उनसे कौन कौन से अनिष्ट फलों
की प्राप्ति होने वाली है। ऐसा होने पर प्रवाह के प्रतिपक्ष निज
शक्ति को लगा कर उससे उत्पन्न होने वाली घटना को वह
बदल सकता है। और यह बदली हुई घटना उन सब शक्तियों
के फलानुसार होगी जो उसके उत्पन्न करने और फलीभूत
करने में काम आई हैं। भविष्यत् रचनाओं को इस प्रकार पल-
टने के वास्ते विशेष ज्ञान का होना अत्यावश्यक है। केवल कर्मों
की व्यतीत गति को देख लेना, और वर्त्तमान समय के साथ उनके
सम्बन्ध का खोज निकाल लेना ही काफ़ी नहीं है। जब विशेष
ान की उपलब्धि होती है, तब उसके बल से गणित द्वारा

वह ठीक ठीक मालूम कर सकता है कि उनकी अपनी शक्ति का क्या असर होगा। भूत कर्मों का प्रवाह कितना और किधर पलटा खावेगा और पलटा खाकर उस प्रवाह से क्या क्या फल प्रगट होंगे और उनसे क्या क्या हानि लाभ होंगे। जब ऐसी सामर्थ्य हो जाती है, तब मनुष्य अपने कर्म-प्रवाह में नवीन शुभ शक्तियों को डाल कर दुष्कर्मों के फलों को निर्बल अथवा निष्फल बना सकता है, और उनसे नई नई रचनायें रच सकता है। यही यथार्थ रसायन है। जिनको इसकी प्राप्ति हुई है उनको लोहा और स्वर्ण समान हो जाते हैं। उनकी सब तृष्णायें निवृत्त हो जाती हैं। अतएव सबको यही उचित है कि उस ज्ञान रूपी पारस को ढूंढ़ें जिससे उनका पाप रूपी लोहा स्वर्ण रूपी पुण्य में पलट जावे।

भूतकाल की क्रियायें अक्रियायें तो नहीं हो सकतीं, उनका नाश तो नहीं कर सकते किंतु उनका जितना फल भविष्यत् में होनेवाला शेष रहता है, उसे बहुत कुछ बदल सकते हैं। इतनाही नहीं, नवीन सुकर्म्म द्वारा उन कर्म्मों से उन्हीं के विपरीत फलों की उत्पत्ति भी हो सकती है। इन सब बातों में प्रकृति का कोई नियम उलङ्घन नहीं होता है। मानवकजन अपने ज्ञानबल द्वारा प्रकृति की नीति को व्यवहार में वर्त्तते हैं और उससे उन्नति को प्राप्त होते हैं। उनकी क्रियायें ऐसी ही निश्चयात्मक होती हैं, जैसी पदार्थ-वेत्ताओं की, जो एक शक्ति के बल को दूसरी शक्ति

के बल से रोक कर समता उत्पन्न करते हैं। यद्यपि वे शक्ति को तो किञ्चित् मात्र भी नाश वा अविद्यमान नहीं कर सकते, किन्तु नवीन शक्तियों को लगा कर, उनके वेग और प्रवाहों की गणना करके, पदार्थ की संचालन गति को अपने इच्छानुसार पलट सकते हैं। इस प्रकार कर्म्मों की गति को मध्यम वा तीव्र भी बना सकते हैं। कर्म्मों की लीला उन सम्बन्धों से बदल जाती है, जिनके आश्रय वे परिपक्व होकर फलीभूत होते हैं।

चूँकि इस विषय का बोध अत्यावश्यक और फलदायक है, इस वास्ते इसको एक और नये ढंग पर वर्णन करना अयोग्य न होगा। जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना ही मनुष्य व्यतीत क्रिया के फन्दे से सुगमता के साथ छुट सकता है। कारण रूपी कर्म, जो अपने फलीभूत भाव को प्राप्त हो रहे हैं, सबके सब उस जिज्ञासु की दृष्टि में आते हैं जो मुक्ति के समीप पहुँच रहा है। जब दृष्टि उलटा कर पिछले जन्मों को देखने से सैकड़ों जन्मों के वृत्तांत (कि जिनमें उसने शनैः शनैः उन्नति की थी) उसके सम्मुख होते हैं, तब उसे अनुभव होता है कि किन किन कारणों से किन किन कर्म्म-बन्धनों को उसने उत्पन्न किया था, उनमें कौन कौन से तो भुगते जा चुके हैं, किन किन के भोग का समय अब आ रहा है, और भविष्यत् में क्या होने वाला है। कारण कार्य्य रूपी कर्म्म दोनों उसे साक्षात् दृश्य आते हैं।

जैसे स्थूल प्रकृति की नीति का साधारण ज्ञान होने से,

थरथराहटों को परस्पर मिला कर उनसे समता पैदा की जा सकती है, और कर्म्म-पाश भस्म की जा सकती है। ऐसी समता करने से मनुष्य उस कर्म्म से मुक्त हो जाता है, क्योंकि समता मुक्ति का दूसरा नाम है।

ऐसा ज्ञान प्राय: मनुष्यों की समझ से बाहर है। तत्त्वज्ञान से लाभ उठाने के निमित्त साधारण मनुष्य जो कुछ उनसे बन सकता है वह यह है कि इस विषय में निपुण पुरुषों की सम्मति लेवें और संसार के बड़े बड़े धार्मिक आचार्य्यों के वचनों को सोचें। इन वचनों के अनुसार जिनकी साक्षी उनको अपने अनुभव से मिले (यद्यपि वह उनको विधि-सहित पूण रीति से तो नहीं समझें) वर्त्तने से वे वैसी क्रियायें उत्पन्न कर सकते हैं जैसे सोचे समझे हुये ज्ञानबल की सहायता से हो सकती हैं। इस प्रकार आचार्य्य भक्ति और उसकी आज्ञापालन द्वारा जिज्ञासु को मुक्ति का वही पद मिल जाता है जो ज्ञान प्राप्ति से मिलता है।

इन नियमों को सर्व सम्बन्धों-सहित विचारने से जिज्ञासु को बोध होने लगेगा कि किस प्रकार मनुष्य अविद्या के फन्दे में फँसकर बेबश हो रहा है, और मानसिक उन्नति में ज्ञान से कितने बड़े बड़े लाभ होते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति मार्ग में लग जाते हैं और इधर उधर धक्के खाते हैं क्योंकि उनको ज्ञान नहीं होता है। वे पराधीन और असमर्थ होते हैं क्योंकि चक्षुहीन हैं। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा जो अधिक वेग के साथ अपने मार्ग की अन्तिम

उसका फल मनुष्य जाति के हितार्थ प्रसन्नता-पूर्वक त्याग दिया जाता है। क्रिया के साथ कर्त्ता का कोई शेष सम्बन्ध नहीं रहता। क्रिया नीति को अर्पण की गई है, नीति ही उसके फल को परोपकार में लगाती है। श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में यह विषय इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्म्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥
त्यक्त्वा कर्म्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्म्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैवकिञ्चित् करोति सः ॥२०॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥२१॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

अर्थ—जिसके सब उद्योग कामना और संकल्प से रहित हैं, और सब कर्म्म ज्ञान रूप अग्नि से भस्म हो गये हैं, उसको ज्ञानी लोग पण्डित कहते हैं ॥१९॥

कर्म्म के फल में आसक्ति को छोड़ कर, जो सर्वदा तृप्ति को प्राप्त आश्रय-रहित है वह कर्म्म में प्रवृत्त हुआ भी कुछ नहीं करता ॥२०॥

कई जन्मों तक एकाकार रहते हैं और इसी वास्ते दो मनुष्यों के भाग्य परस्पर संयुक्त होते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि सांसारिक जीवन में मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों की उद्योगिता में भेद होने के कारण मनुष्यों के स्वर्गीय भोग का समय बराबर नहीं होता है और इस वास्ते कुटुम्बी जुदा जुदा हो जाते हैं; और सम्भव है कि फिर कई जन्मों तक उनका मिलाप न हो। सामान्य नियम तो यह है कि जीवन के अति उत्तम व्यवहार में दो मनुष्यों का जितना अधिक गूढ़ सम्बन्ध होगा, उतनी ही अधिक संभावना उनको एक कुटुम्ब में जन्म लेने की होगी। कुटुम्ब के एकत्रित कर्मों का भाव भी मनुष्य के निज कर्मों पर पड़ता है और इसी कारण कुटुम्ब के साथ कुछ दुःख सुख उसे ऐसा भी भोगना पड़ता है जो उसे अन्यथा भोगना न पड़ता। क्योंकि वह उसके प्रारब्ध में नहीं है। इससे विदित होता है कि मनुष्य को सञ्चित कर्मों का कुछ अंश बेअवसर (बेमौका) भी भोगना पड़ता है।

कर्म-समूह की गति का सविस्तार वर्णन न तो छोटी सी पुस्तक में समा ही सकता है, और न लेखक की सामर्थ्य में ही है। इस स्थान में जिज्ञासुओं को इस विषय पर बिखरे हुए इशारे ही दिये जा सकते हैं। सम्यक् ज्ञान के वास्ते एक एक गति वा दशा को सहस्रों वर्ष पर्यन्त पीछे तक खोज कर विचार करने की आवश्यकता होती है। ऐसे विषयों पर मानसिक कल्पनायें

करनी व्यर्थ होती हैं, शान्ति और धैर्य के साथ एक एक गति के लक्षणों को दूर तक दृष्टिगोचर करने से ही कुछ लाभ हो सकता है, मनोकल्पना से कुछ नहीं प्राप्त होता।

परन्तु कर्म-समूह की एक और गति है जिसका किञ्चित् मात्र वर्णन करना इस स्थान में आवश्यक प्रतीत होता है। उस गति के द्वारा मनुष्य के संकल्प तथा उसकी क्रियाओं, और वाह्य प्रकृति में परस्पर सम्बन्ध जाना जाता है। इस अस्पष्ट विषय पर योगिनी मेडेम बलेवेटस्की (Mme Blavatsky) यह लिखती हैं "फलातू" (Plato) के मतानुसार अरस्तु (Aristotle) वर्णन करता है कि भूत शब्द का अभिप्राय उन विदेही सत्ताओं से है, जो हमारी सृष्टि के चार बड़े विभागों की रक्षा और पालन करती हैं। इस प्रकार मूर्त्तिपूजक लोग ईसाइओं से अधिकतर तो महाभूतों और चतुर्दिशाओं की स्तुति और अर्चना नहीं करते हैं। उनकी स्तुति और अर्चना उन देवताओं के निमित्त होती हैं जो चार दिशाओं की रक्षा करते हैं और जिनको दिक्पाल कहते हैं। पादरी लोग दो प्रकार की विदेही सत्तायें मानते हैं, एक पिशाच रूप और दूसरी देवता रूप। केवालिस्ट और तत्त्ववेत्ता एक ही प्रकार की सत्तायें मानते हैं। इन्हें उन सत्ताओं में भेदभाव नहीं रहता है। केवल रोमन चर्च वालों का ही यह स्वभाव होता है कि जब किसी सत्ता को उनके दिये हुए नाम से भिन्न किसी अन्य नाम से पुकारा